अलख

अलखादेश

मासिक पत्रिका

वर्ष-2016 अंक-07

जुलाई -2016

अलख अमर विवेचन प्रत्यक्षालय
सिद्ध झण्डी, फगवाड़ा रोड,
माहिलपुर (होशियारपुर)
पिन—146105
website:-
aavpashram.com
Email-
aavpmahilpur@gmail.com

जिस दिन परिपूर्ण परमब्रह्मज्ञानी गुरू महाराज का मेल हुआ और संग होते ही जीव आज्ञाकारिता में शरणागत हुआ इस दिन जीव कृपा प्रसाद में उन महापुरूष द्वारा तत्काल ही उस अविनाशी एवं दिव्य प्रकाश को अपने ही घट में आर्शीवाद रूप में प्राप्त कर लेता है

स्वामी विशेषानन्द जी.

सम्पादकीय ✍

श्री गुरू पूजा—एक ऐसा त्यौहार या पर्व जो जीवन में उस सज्जन को याद करने हेतु मनाया गया जिससे जीवन में कुछ परिवर्तन आया। जीवन की दिशा बदली- ज्ञान का उदय हुआ - अहंकार के बादल छटे। तमसो मा ज्योतिर्गम्य की वेद वाणी सार्थक हुई और जीवन प्रकाश से भर गया। ऐसे सज्जन को शास्त्रों ने नाम दिया है गुरू—जिसका शाब्दिक अर्थ होता है अंधकार से प्रकाश की और ले जाने वाला। जीवन में जिसने किसी भी प्रकार के अज्ञान से मुक्ति दिलाई उसे कहा गया गुरू। पर जिसने सम्पूर्ण संसार को ही अज्ञान का स्वरूप और इसकी चेतना को परब्रह्म स्वरूप जनाकर भीतर उतारा उसे कहा गया सदगुरू ऐसे परम पावन श्री सदगुरू देव के श्री चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

''कींट न जाने भृंग को गुरू करले आप समान।।''

''स्वामी विशेषानन्द''

विशेष वचन-श्री गुरू पूजा विशेषांक

प्रवचन ब्रह्मलीन सद्गुरु देव स्वामी अलखानन्द जी महाराज

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरू शंकर रूपिणौ। यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र बन्द्यते।।
एक शब्द गुरूदेव का जाका अनन्त विचार। थाके मुनिजन पंडिता वेद न पावे पार।।
शब्द बरोबर धन नहीं, जो कोई जाने मोल। हीरा तो दामों बिके शब्द न मोल न तोल।।

आज यहां सारे इकट्ठे हुए हैं किस लिए एकत्रित हुए हैं? किस खोज में, वह खोज आम नहीं, खास है, खोज क्या है कि जीवन में सत्त क्या है? जीवन में शाश्वत शान्ति कैसे प्राप्त हो? जीवन में जीते जी परमानन्द में कैसे बरतें, कैसे जीऐं, और इस शरीर के छूटने के बाद शाश्वत शान्ति में कैसे जाएं। दो बातें सामने हैं कि जीवन में सुख कैसे भोगें। यदि जीवन में सुख से न जी सके तो पशुओं से गए गुजरे हैं। पशुता में कई प्रकार के सुख हैं। पशु को कभी उदास (बोर) होते नहीं देखा होगा। उस को बस इतना पता है कि घास हरा खाना है, मेरा है या तेरा इसका उसको कुछ पता नहीं, किसी खेत में घुस कर घास खा रहा है किसी ने डण्डा मारा तो थोड़ा आगे चला जाएगा और ज्यादा डण्डे मारे तो खेत से बाहर हो जाएगा परन्तु चिन्ता का कोई विषय नहीं। विवाह शादी की कोई चिन्ता नहीं, बेटी भेजनी है बहु लानी है ऐसी कोई चिन्ता नहीं। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है। परन्तु मनुष्य अनेक प्रकार के लड़ाई-झगड़े, कलह क्लेश, राग द्वेष में जल रहा है। एक दूसरे से आगे निकल जाने की दौड़ लगी है। उत्तम नौकरी मिलने की विदेश जाने की अर्थात अनेक प्रकार से इच्छाओं की पूर्ति की दौड़ लगी है। अर्थात तरह-तरह की चिन्ताऐं लगी हैं। पशु का अगर पेट भर गया तो बैठ कर जुगाली करने लग गया। यदि आज मनुष्य का पेट भर गया तो वह कल की चिन्ता करता है, अगर मकान बन गया तो ठीक है परन्तु चिन्ता फिर भी करता है कल मेरे बेटे सिर कहां ढकेंगे, इस थोड़ी सी जगह में, दूर तक इन चिन्ताओं से फिकर से बोझ से लदा है। पशु ने जितना चर लिया पेट भर लिया अगर कुछ बचा है तो साथ नहीं ले जाता परन्तु मनुष्य छल कपट से भी, धोखे से भी कल के लिए कुछ रखूं ऐसा प्रयत्न करता रहता है। कहने जा रहे थे कि इस प्रकार से विचार कर के देखा जाए तो पशु कई मामलों में मनुष्य से अच्छा है फिर मनुष्य के शरीर के लिए सब शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों ने, सब संतों ने भूरि-भूरि महिमा क्यों गाई है।

बड़े भाग्य मानुष तन पावा,
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।।

सुर नाम देवताओं का, देवता भी इस मनुष्य शरीर को पाने की याचना करते हैं देवलोक में बैठे देवता भी चाहते हैं कि मनुष्य का शरीर मिले क्यों चाहते हैं शायद ये विशेषता तुझे दिखाई नहीं दे रही है। क्योंकि मनुष्य का शरीर साधना का धाम है। धाम तो बहुत सुने होंगे जैसे गया धाम, प्रयागराज धाम, हरिद्वार धाम, परन्तु शास्त्र कह रहे हैं कि मनुष्य का शरीर धाम है। तुम धामों में स्नान करते हो। लेकिन मनुष्य के शरीर के अन्दर भी स्नान होता है। पर किसका स्नान होता है जो उल्टे, जो उल्टने के लिए रजामन्द हो, पिछले जन्मों के कारण से भी और

वास्तविक उचित संगत से भी, बातों तक न हो वस्तुत: जीवन की बदलाहट हो गुरवाणी में वचन आता है जो अत्यन्त सुन्दर है कह रहे हैं:—

''बिन सन्तोष न कोऊ राजे,
सकल मनोरथ विरथे सब काजे।।''

सन्तोष के बिना संसार में कोई रजता नहीं यानि मन नहीं भरता, सन्तुष्टि नहीं होती। अनेक प्रकार के मनोरथ (मनोकामनाऐं) जीव मन में लिए बैठा है। सन्तोष तब तक नहीं होता जब तक मन में कामनाएं लिए बैठा है और कामनाऐं तब तक दूर नहीं होंगी जब तक ईश्वर भजन नहीं करता।

बिन हरि भजन न मिटेहि कलेशा।

ईश्वर के भजन के बिना कामना दूर नहीं होगी। और जब तक कामना पूरी नहीं होगी। तब तक स्वपन में भी सुख नहीं मिलने का।

बिन हरि भजन न काम नासाहिं।
काम अचित स्वपने सुख नांहि।।

स्वपन में भी सुख न होगा जब तक सब्र सन्तोष नहीं और सन्तोष तब तक नहीं होगा जब तक कामना दूर नहीं, कामना दूर होने का और कोई उपाय नहीं। पच-पच कर मर जाओ करोड़ों उपाय कर लो। मात्र एक उपाय, एक रास्ता बताया सन्तों ने, सदग्रन्थों ने कि हरि का भजन करो। ईश्वर के भजन में जब तक जीव समझदारी से नहीं लगता तब तक मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं अगर अन्तर है तो पशु ज्यादा सुखी और मनुष्य ज्यादा दुखी। जरा विचार करके देखो वाल्यकाल से, किस समय से जीव यह कहता आ रहा है। चिन्ता ने घेरा हुआ है। बाल्यकाल में मुझे पढ़ना है, पास होने की चिन्ता रहती है। पहले तो कुछ दिन खेल कूद के होते थे अब वो भी गये, तीन साढ़े तीन वर्ष का बच्चा हुआ तो भेजो पाठशाला में अब तो प्राईवेट स्कूलों में ऐसी व्यवस्थाऐं कर दी हैं। घर वाले भी कहते हैं कि बच्चा घर से बाहर रहेगा किसी प्रकार से भी कह लो कि जल्दी पढ़ जाएगा। कुछ भी कह लो चिंता उसी दिन से घट में घर कर लेती है और सारा जीवन चिन्ता-चिन्ता। व्यवाहारिक जीवन में देख लो जीवन कितना सुखी है, सन्तुष्ट है। ऊपर से भले जीव कुछ भी कह रहा है। परन्तु भीतर से सन्तुष्ट नहीं शान्त नहीं भीतर कलह कल्पना है। भीतर कुछ कुर-मुर कुर-मुर हो रही है। हर समय भीतर कुछ न कुछ माला फिर रही है उसके रूकने का कोई प्रश्न नहीं किसी को अगर चुप रहने को कहा जाए तो वह बाहर से तो चुप हो गया परन्तु स्वयं भी चाहे कि मैं भीतर चुप हो जाऊं तो चुप हो जाने का उसके पास कोई रास्ता नहीं। इस प्रकार से जो तेरी ऊर्जा, तेरी शक्ति है, जिधर को ले जा रही है उधर तेरी काया को भी जाना ही पड़ेगा। इस बात को भली प्रकार से समझ लेना कि मन, सुरति, चित्त, ख्याल कुछ करके कह लो कहां जा रही है यह?

क्या सोचता है प्राणी? जो-जो सोचता है वैसा-वैसा आगे अपने आप तैयार होता जा रहा है और वो जो कुछ भी सोचता है उसके पीछे उसको जाना पड़ रहा है। तब क्या करके कहने जा रहे थे। कि जब दुखी होते हैं। दुखी होकर क्या हम इस प्रकार की सोच सोचते हैं कि दुखों का कारण मैं स्वयं नहीं, दुखों का कारण घर वाले हैं, बाहर वाले हैं, पड़ोस बाले हैं, समाज वाले हैं, भेद मजहब वाले हैं अर्थात कोई दूसरे हैं मैं नहीं अगर ये दूसरे न होते तो ऐसा न करते तो सुखी होता। इसका मतलब यह निकलता है कि अगर सारी दुनिया सुखी हो तो मैं सुखी हो जाऊंगा। कहते हैं कि जहां फूल होंगे वहां कांटे भी होंगे जहां सुख होगा वहां दुख भी होगा यदि विचार करके देखा जाए तो इसका कारण हम स्वयं हैं। हम ने जो कुछ चाहा था जो कुछ बीजा था वो हमने अब काटा है। और आगे जो

कुछ बोएंगे वो काटेंगे। इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि जो हम चाहते हैं वो हमें मिल रहा है। हमारा जो चाहना है वो अल्प है थोड़ा है बेसमझी है जो चाहा था बेसमझी का था। हमारी जो मांग है वह छोटी है थोथी है। इसी कारण से दुखी हैं। जो कांटे इकट्ठे किये थे अब चाहते हैं कि जल जाएं, हट जाएं अब उन को हटाने के लिए शक्ति लगा रहे हैं। पहले बोने के लिए लगा रहे थे।

हे प्राणी! यह दोनों बातें अधूरी हैं यह दोनों बातें अल्प हैं। इन दोनों बातों को हटा कर कोई तीसरी बात और चाहिए थी। क्या? अपने दुखी होने का कारण कि मैं दुखी क्यों हूं? तुझे स्वयं खोजना है जब इस बात को अपने भीतर खोजेगा तो भीतर से जवाब मिलेगा कि दुखों का कारण है इन्द्रियों का रस। अगर किसी एक ने ऐसा सोचा तो उसने घर छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिये हैं यह सब कुछ छोड़ कर वह सोचता है मैं त्यागी हो गया भले ही त्यागी हो गया परन्तु जिसने (कामनाओं) भीतर पकड़ा था, जो भीतर कुर-मुर हो रही थी, जो भीतर दुख था, वह दूर नहीं हो गया कुछ करके कह लो। इस लोक तो क्या अगर कहीं पाताल में उतर गया, देवलोक में चला गया, पित्तर लोक, गन्धर्व लोक में चला गया। किसी भी लोक में चला जाये परन्तु शान्ति न होगी। राग साथ है, द्वैष साथ है (राग मतलब लगाव, द्वैष-घृणा) राग मतलब जिसको हम प्रिय कहते हैं जिसको हम प्रिय समझते हैं। वो प्रिय है कि नहीं यह तो हमने सोचा नहीं क्योंकि हम उसे समझते हैं। जिसको हम अच्छा समझते हैं वह अच्छा है, यह जरूरी नहीं। यह हमारी समझ है। कभी किसी से मित्रता करते हैं तो कभी शत्रुता हो जाती है। कभी कल तो अच्छा लगता था अब खराब लगने लगा है तो इस प्रकार से झगड़े चलते रहते हैं। क्यों? तो कहने जा रहे थे कि न तो यह प्रेम है और न यह द्वेष। यह वास्तव में है ही नहीं। तत्ववेता महापुरूषों ने तत्ववेत्ता जिन्होंने तत्व को जाना, खोजा, और पाया। कहते हैं:—

देखा देखी भक्ति का कबहूं न चढ़सी रंग।
विपत पड़े तो छांड़सी, ज्यों केंचुली भुजंग।।

''जिस पर चलती सारी दुनियां
वह सन्तों की राह नहीं।''

जिस पर सारी दुनियां चलती है वह सन्तों की राह नहीं होती क्योंकि लगभग दुनिया देखा देखी करती है। भेड़ चाल चलती है। जिधर को एक भेड़ चल पड़ी उधर को और भी दुनिया चल पड़ती है। पर यह जीवन का सही जागना नहीं। जीवन का जागना क्या? सही सोचना, सही सोच क्या? सही सोच कब? बेचारा एक प्राणी विषय वासनाओं से संतिप्त है काम ने थपेड़ा मारा कहीं और बह गया। वह राजा है बड़ा विद्वान है बड़ा पहलवान है। पर जब काम ने थपेड़ा मारा उसका लक्ष्य छूटा और वह कहीं और को चल पड़ा। इसी प्रकार लोभ ने थपेड़ा मारा तो क्रोध भी साथ हो लिया और क्रोध ने विक्राल रूप धारण किया तो वो अच्छा बुरा, भला कुछ भी नहीं सोच सकता। अगर अब उस से बचना भी चाहे तो कैसे? तब कहने जा रहे थे कि हे प्राणी पहले लौट कर अपने घर में आ। घर में आकर समझेगा काम क्या? घर घर में आकर देखेगा क्रोध क्या? घर में आकर होश में आयेगा तो देखेगा लोभ क्या? मोह क्या? घर में आकर बैठ कर देखेगा तेरा क्या और मेरा क्या? शास्त्र कह रहे हैं:—

तोर मोर की जेवड़ी, बट बांधा संसार।
कबीर ऐसा क्यों बंधे, जाको नाम आधार।।

मेरे और तेरे की रस्सी है जो सारे संसार को बांध रही है कैसे बांध रही है। जो अपने आप में बैठेगा

तो खोजेगा। अब उसके लिए दो एक बातें कहनी हैं। अगर वो चित्त में लेवें तो। पहली बात है अपने-आप को, अपने आपे को समझने के लिए तेरे से ऊपर कोई हस्ती है। किसी प्रकार से भी है। जब किसी का अंहकार चूर हो जाता है। तो मानना ही पड़ता है परन्तु उस समय खुद शेष हो जाता है क्या फायदा हुआ जीते जी अगर कुछ मान कि तेरे ऊपर कोई हस्ती शक्ति है। उस को परमेश्वर कह लो ब्रह्म कह लो। सदगुरू कह लो, सरवेश्वर कह लो। शायद तूं उसको मानता भी है। अगर है तो कहां है ? इस बात को अब थोड़ा समझना, एक तो अपने से जुदा देखना और एक अपने में देखना जिसको तूं मानता है।

मानना छोड़ और उसे जानने की कोशिश कर। जब तक मानता है तब तक जानने का कोई प्रश्न ही नहीं क्योंकि सिर्फ मान लिया है, ईश्वर को, मान लिया ईश्वर है, जानने की बात समाप्त हो गई, नहीं ? जो जानने की बात समाप्त हो गई तो सारा जीवन मानता रहेगा, जानेगा नहीं तो कुछ हाथ नहीं आएगा, मान मत उसको जान। जान कर निर्णय ले। बिना जाने, बिना ईश्वर को देखे चैन नहीं, शान्ति नहीं अब यह प्रश्न खड़ा होगा जीवन को परिवर्तन किये बिना चैन नहीं होगी। यह तब सम्भव है। जब कि बाहर के थपेड़े खाने से थोड़ा सा संभलेगा ? क्रोध से कैसे अपनी रक्षा कर सकता है अगर यह देखे कि थोड़ा सा क्रोध आया तो ठहर कुछ देर बाद अगर अपने आपे को कुछ देर रोक सकता है तो क्रोध छोटा हो जाएगा, काम छोटा हो जाएगा। लोभ की बात आई आज नहीं कल कर लेंगे। अगर थोड़ा सा जागा है तो रोक सकता है परन्तु यह इतना आसान नहीं, आसान कैसे हो। कहते हैं अगर हाथ, पांव शरीर धूल से भर जाए तो साबून से धो लो। अगर कपड़े गंदे हो जाएं तो उसे साबुन से धो लेते हैं। मशीनों को भी साफ कर लेते हैं। मकानों को भी साफ कर लेते हैं परन्तु शास्त्र कहता है:—

मत भरीये पापां के संग।

कहते हैं मन, चित्त, बुद्धि पापों से भरी है वासनाओं से भरी है तो अपनी तरफ अन्य पाप वासनाओं को खींचती है।

कहते हैं कि कोई आदमी खजाने पर चौंकीदार था उसका भाई एक बार उससे मिलने गया। खजाना तो बंद था। उसके भाई ने सुना था कि पैसा को पैसा खींचता है। उसने जेब से एक रूपया निकाला जहाँ खजाना बन्द था उस गेट के छिद्र के पास गया अचानक उसके हाथ से रूपया छूट गया और उस खजाने के अन्दर जा गिरा तो वह चिल्लाने लगा, रोने लगा कि किसी ने गलत कहा है कि पैसा को पैसा खींचता है। वहाँ और भी दरबान थे इकट्ठे हो गए पूछने पर बताया तो सभी दरबान कहने लगे कि ठीक ही कहते हैं पैसा को पैसा खींचता है जिस के पास ज्यादा शक्ति थी वह खींच ले गया। खजाने में ज्यादा पैसे हैं। ज्यादा शक्ति है। वह तेरा रूपया खींच ले गया।

अब आवश्यक्ता इस बात की रहती है कि पाप कैसे धोएं। वासनाएं कैसे खत्म करें **''मत भरिए पापां के संग, एहे धोए नाम के रंग''** यानि यह बुद्धि पापों वासनाओं से भरी हुई है। इसे नाम के रंग से धोएं। तो कैसे धोएं-नाम के रंग क्यों धोएं पापों को, क्यों हटाएं, हमने किये थे अब बख्शना चाहते हैं। पापों को खत्म करने के लिए प्रार्थाना करते हैं। अगर पाप न बख्शे गये तो हम उन देवी देवताओं को भी साथ ले लेते हैं। कि यह झूठे हैं क्यों ? उसने हमारे पाप बख्शे नहीं गुनाह माफ नहीं किये अगर गुनाह माफ कर देता तो ठीक थे। अगर फल भोगने आया तो देवी-देवता, साधु, गुरू सब छोड़ देते हैं और यह कहते हैं कि नाम भी झूठा,

भक्ति भी झूठी है, भगवान भी झूठा है और गुरू भी झूठा है। जहां थोड़ा दुख था वहां और ज्यादा दुखी हो जाते हैं, ''**अपना किया आप ही पावे। प्रारब्ध से नाम कहावे**। आपे बीज ते आपै खा'' यानि जो कर्म करेगा वैसा ही फल मिलेगा यदि भगवान के नाम में अपना चित्त जोड़ेगा तो उससे जा मिलेगा। मैं किसी को नहीं सुना रहा अपने कानों को सुना रहा हूं मैं क्यों सुनाता हूं उसमें मेरा परम स्वार्थ है क्या? मैं जो वचन सुनाता हूं उस पर चलता हूं उस पारब्रह्म एक परमेश्वर का पुजारी रह जाऊं। अगर कोई लाभ उठा रहा है तो सुने समझे और समझ कर अगर चाहे तो दिव्य नेत्र खुलवाए। मेरा तो एक ही वक्तव्य है पहले भी और आज भी उस परमात्मा, पारब्रह्म से मिल कर परम आनन्द को प्राप्त होवो। अब आवश्यक्ता इस बात की है कि परमात्मा ने जो कुछ भी तुझे दिया है वो तेरा ही मांगा हुआ है। किसी का नहीं। जो सही मांग थी वो तुझे पता ही नहीं, सही मांग कब आए, तो सही मांग तब आए जो तेरा मांगा हुआ है उसे श्रद्धा से, शान्ति से, खुशी से भुगतान कर जो किसी का देना है भली प्रकार दे। उसमें झगड़े मत खड़े कर उसमें अब और-और पाप मत सोच। यह मेरे बाधक हैं। मेरे लिए पत्नी बाधक है। मेरे लिए पति बाधक है। पुत्र बाधक है, मित्र या शत्रु बाधक है। कोई तेरे लिए बाधक नहीं वो तो अपने आपे में उलझा है, पति अपने आपे में उलझा है, पुत्र अपने आपे में और पत्नी बेचारी अपने आपे में उलझी है, तेरा क्या सोचे, सब अपने आपे में उलझे हैं। सब अपना-अपना भला सोच रहे हैं। हे प्राणी! तेरा भला किसमें? तेरा भला है क्या? पापों को हटाने में। पापों को बढ़ाने में कभी भला नहीं क्योंकि पाप में और पाप। जो पाप किये हैं अब उनका फल भोगने में जो खराब लग रहे हैं वहां और पाप करता है जिसमें और देनदारी बढ़ती है। जब और देनदारी बढ़ती है तो और दुखी होगा। इसलिए कहने जा रहे हैं कि जो तूने किया है उस का भुगतान (फल) शान्ति से सोच और आगे के लिए पापों से बचने के लिए अपने को उस परम पिता परमेश्वर, सदगुरू की शरणागत कर जब चित्त शरणागत हुआ तो तुरन्त शान्ति मिलेगी। शरणागत क्या कि कर्ता तूं। अगर परमात्मा को जो तेरी अपनी काया में ही बैठे हैं, तेरे पास तेरे निकट है अगर उसको कर्ता मान ले तो बहुत जल्दी झगड़ा खत्म होता है। अगर परमात्मा को अपने घट में खोज ले, समझ ले किसी ऐसे ज्ञानी से, पंडित से ऐसे योगी से भेंट कर ले जो तेरी काया में तेरे ही स्वरूप को दिखा देवे अगर दिखा देवे तो उसमें उतर जा अगर शान्ति चाहता है तो फिर वही बात कहनी पड़ेगी कि पहले कामना त्याग, जब तक कामना रहेगी शान्ति नहीं मिलेगी। कामना त्याग और तुरन्त शान्त हो कामना ही तेरी दुखदाई है दूसरे शब्दों में इसे सबर सन्तोष कहा है।

बिन सन्तोष नहीं कोई राजे, जो कुछ भी कर लेवे। सकल मनोरथ दीखे सब काजे।।

मनोरथ मतलब मन की इच्छाएं और इच्छाएं यह तो कभी भी पूरी नहीं होंगी चाहे कुछ भी कर ले। सारी सृष्टि का राजा भी बन जाए। अगर ईश्वर बनाम शाश्वत शान्ति चाहिए तो उसके लिए उठना पड़ेगा, सोचना पड़ेगा।

महात्मा बुद्ध ने अपने पिता से कहा कि मैं घर छोड़ कर जा रहा हूं। पिता ने कहा क्यों छोड़ रहे हो घर। बुद्ध कहने लगे मुझे कुछ चाहिए। वो अगर मुझे घर में दें दो तो घर नहीं छोडूंगा। पहली यह कि मैं जिस प्रकार युवक हूं बस इसी प्रकार का युवक रहूं। दूसरा मुझे मृत्यु न आवे मैं कभी न मरूं यह मेरा धन सम्पति जो कुछ दिखाई दे रहा है, कभी भी लुप्त न हो हमेशा ऐसा ही रहे। कभी रोगी

न होऊं। यह चार चीज़ें मुझे अगर दे दो तो फिर मैं घर से कभी नहीं जाता। पिता ने कहा यह चार चीज़ें (मृत्यु न आवे, बूढ़ा न होऊँ, रोगी न होऊं, धन सम्पति ऐसे ही बने रहे) यह तो मेरे हाथ में भी नहीं। बूढ़ा मैं भी होऊंगा, रोग मुझे भी आते हैं एक दिन मैं भी मरूंगा और धन सम्पति कभी रहती है और कभी खत्म भी हो सकती है।

वैद्य मोया, रोगी मोया, मोया सकल संसार।
कबीर ऐसा क्यों मोया, जाको नाम आधार।।

तब आवश्यक्ता इस बात की है यह सब तो मैं तुझे नहीं दे सकता महात्मा बुद्ध के पिता जी ने कहा। बुद्ध कहते हैं-कि मैं इसकी खोज करूंगा कैसे करूं कैसे हटे यह ताप इसके लिए मुझे जाना पड़ रहा है। पिता के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर न रहा कि तुम इसलिए मत जाओ, उस लिए मत जाओ। आखिरकार महात्मा बुद्ध इसकी खोज करते ही रहे। तो कहने जा रहे थे कि मन, चित्त दुखी है कब तक दुखी है जब तक मांगें हैं और वह मांगे परमात्मा तक नहीं आने देतीं। भले ही हमें प्रतीत हो गया है परमात्मा है, परमात्मा कहां, परमात्मा कैसे है परन्तु हमारी मांगें हमारे प्रलोभन यह परमात्मा तक नहीं जाने देते, परमात्मा से विमुख करते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। तब कहने जा रहे थे कि नाम रंग में कौन रंगे जो प्रलोभन को छोड़े नाम में चित्त, सुरत देवे। फिर नाम तुझे अपने आप में ले जाएगा उस सतह तक जहां पर फिर वो सर्मथ हो जाए, जहां फिर वो भोग फीके लगें। परन्तु यह कौन कर सकता है जो भगवान का सच्चा नाम लेगा जिसकी लौ लगन जाग गई है। लौ लगन क्या होती है लौ लगी हुई है हटती नहीं, हटती नहीं दिन रात वो कब है।

तस्मातसर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनों बुद्धि र्मामेवैष्यस्य संशयम्।।
(गीता अ ० 8 श० 7)

निरन्तर सुमिरण कर सब समय में निरन्तर लगातार जब भी कोई मसला आया उसमें सुमिरण की बात खोज, अगर कोई सुमिरण की तरफ चित्त देगा तो शान्ति सबर, सन्तोष कुछ करके कहा होगा, अगर झण्झटों में चित्त देगा तो, शान्ति सबर से जुदा हो जाएगा कभी कुछ होने का नहीं। शास्त्रकार कहते हैं कि

''बिन सन्तोष न कौऊ राजे।
सकल मनोरथ दीखै सब काजे।।''

बिना सन्तोष के किसी का पेट नहीं भरता, किसी की सन्तुष्टि नहीं हुई किसी को शान्ति नहीं मिली। एक ही तरीका क्या? सन्तोष। जिसने सन्तोष धारण कर लिया, जो उल्ट गया, जो अपने कृत को शान्ति पूर्वक भोगने को धारण कर गया या रजामन्द हो गया जो आगे सुधार के लिए जाग गया जो प्रारब्ध है उसे रो कर नहीं हंस कर भोग रहा है और आगे के लिए एकदम सोच विचार कर रहा है। आगे एक बात को जिसने धारण किया, क्या कि जब भी पाप की कल्पना मन में, चित्त में आए तो अपने आपे को रोके, कहे ठहरो, और कल पर छोड़ देवे और जब धर्म की, शुभ की, तथ की, सुपथ की बात आए तो उसे कल पर नहीं छोड़ता और झटपट उसी समय कर डालता है। झट से क्यों? क्योंकि मन बदलते देर नहीं लगती मन का एक ही झगड़ा जन्म जन्मांन्तरों से, क्या? अच्छे काम कल पर छोड़ देता है कल कर लेंगे अभी जल्दी क्या है। अभी कौन से मरने लगे हैं बूढ़े होकर कर लेंगे। भगवान का ध्यान बूढ़े होकर कर लेंगे अभी दुनिया के काम कर लो। भगवान के भजन की बात फिर सोचेंगे। सेवा सत्संग की बात फिर कर लेंगे। फिर-फिर, बाद के लिए छोड़े जा रहा है। पर जब पाप का वक्त आता है तो क्षण भर के लिए भी रुक नहीं

सकता झट से कर डालता है। चित्त पर जब तक अपने आपे की बदलाहट नहीं लाता। जब तक अपने आपे को धैर्य धारण करके सबर सन्तोष की तरफ नहीं ले जाता तब तक भला शान्ति कहां। फिर हमारे कर्मों का कोई दूसरा जबावदेह नहीं है। हमारे कर्मों के हम स्वयं जवाब देह हैं। पूरी शान्ति कैसे धारण हो ? चिन्ता हो कि किस प्रकार से ध्यान लगे, सुमिरण कैसे हो, जिस को यह फिक्र, चिन्ता हो,

चिन्ता तो सत्तनाम की और न चितवे दास।
और जो चितवे नाम बिन सोही काल के ग्रास।।

सुदामा ने और सब बातों को छोड़ कर एक बात को महत्व दिया कि सुमिरण हो। उसकी पत्नी ने तरह तरह से चिन्ता बनाए रखी। सुदामा को भी चिन्तित करना चाहा पर वह उसके उलझाव में न आया बल्कि भजन कर गया। भजन कर गया तो भगवान को भी अपने आंसुओं से उसके चरण पखारने पड़े। तो तब कहने जा रहे थे कि जब तक जीवन भर भगवान के भजन की इच्छा की, छोटी मोटी उलझनों, आपत्तियों को सहन करता रहा। जब तक भक्त नाम में चित्त जोड़ता है, तो दु:ख रह भी नहीं जाते। दुख को हम मानते हैं। हाय समाज क्या कहेगा, लोक लाज में आ जाते हैं। शास्त्र क्या कहता है:—

कोई न काऊ सुख दु:ख दाता,
निज कृत कर्म भोग फल मन्दा।।

निज यानि अपना किया हुआ कर्म ही काम में आता है यानि जो बोया हुआ है वही काटना पड़ता है। जो बोया हुआ है, जब-जब हम काटते हैं तो पश्चाताप करते हैं। दुख का उपाय सोचते हैं और उसमें हम और पाप कर डालते हैं। यदि परम सुख चाहता है तो भजन की बात सोच और जो परमात्मा के भजन की बात सोचता है तो चित्त शान्त होता है। भजन से तात्पर्य है मन का उल्टना, बदलना, मन का अपने आपे में उल्ट कर आना जब अपने घट में ही उल्ट कर आता है तो ही शान्त होता है। जो घट से बाहर गया तो तब शान्ति का कहीं नाम नही।

जैसे पशु बेचे जाते हैं, गाय, भैंस, बकरियां बेची जाती हैं उसी तरह किसी समय मनुष्य भी बेचे जाते थे। एक रबिया नाम की लड़की थी। संयोग वश बचपन काल में ही उसे सत्संग मिल गया। सत्संग की प्राप्ति आम नहीं होती अगर किसी को सत्संग मिले भी, तो वह नहीं सुनता, नहीं समझता, अपने कल्याण की बात भी खोज नहीं सकता। एक बार स्वामी शंकराचार्य प्रश्न करते हैं कि

01. संसार में गूंगा कौन है ?

02. संसार में बहरा कौन है ?

इसका उत्तर भी स्वयं स्वामी शंकराचार्य जी देते हैं। ***जो समय की बात को, तथ की, सुपथ की बात सुनने में समर्थ नहीं अर्थात नहीं सुनता, वह बहरा है और जो कह नहीं सकता वह गूंगा है।*** आम लोग इसी तरह गूंगे, बहरों की तरह अपना जीवन गंवा रहे हैं नष्ट कर रहे हैं। जो अपने परम कल्याण की बात नहीं खोजता, वो अनाड़ी है। बचपन काल में रबिया को सत्संग मिल गया। सदुपदेश भी हो गया। परन्तु समय क्या पल्टा खाए, कुछ कहा नहीं जाता। होता सब के साथ है, दु:ख-सुख सब को आते हैं। विचारवान हंसते-हंसते सूली पर चढ़ जाते हैं पर मूर्ख लोग रो-रो कर, आंसू बहा कर, समय वो भी काटते हैं। ज्ञानी तो दुख ज्ञान से काट लेता है और मूर्ख रो कर काटता है। ज्ञानकर्ता भगवान को देखता है और कहता है परमात्मा तेरी देन है। दृष्टि का ही तो फर्क है जब दृष्टि अन्दर को पलटी तो आनन्द, सभी जगह आनन्द। जब कर्त्ता अपने आपे को देखता है, दूसरों को देखता है, पड़ोसी को देखता है, तब दुखी होता

है। यह मेरे झगड़े की जड़ है यह मेरे दुख का कारण है।

''ज्ञानी काटे ज्ञान से मूर्ख काटे रोय।''

मूर्ख रो कर समय काटता है। वक्त ज्ञानी और मूर्ख दोनों काटते हैं। कहने जा रहे थे वक्त बदला। घर वालों ने गरीबी के कारण लड़की को (रबिया) को बेच ड़ाला। ग्राहक कोई खरीद कर ले गया वह रबिया को खाने को कम और बासी देता था और काम बहुत कराता था। ज्यादा काम होने के कारण सोने को समय भी कम मिले। जैसे पानी भरना, बर्तन धोना, कपड़े धोना, पशुओं के लिए चारा काटना और ड़ालना। उमर छोटी, काम ज्यादा, जब कष्ट दिये तो रबिया घर से भाग गई और आगे कहीं छुप कर रही क्यों कि अगर भागा हुआ पकड़ा जाए तो उसे राजा सज़ा देता था यानि कोई भागता भी नहीं था। भाग कर जहां गई तो वहां उसे सत्संग मिल गया जब सत्संग मिल गया तो संत की याद ताजा हो गई

बड़े भाग्य पाईये सत्संगा, बिन प्रयास होय भव भंगा।
ज्ञान अंजन गुरू दिया अज्ञान अन्धेर विनाश।।
हरि कृपा ते संत भेंटिया नानक मन प्रगास।।

ज्यों ही मन मनमें प्रकाश हुआ त्यों ही प्रेम का झरना फूट पड़ा। इसे भी समझ लेना गौर से

नहीं शीतल है चन्द्रमा और न शीतल कोय।
शीतल तो हैं संतजन नाम स्नेही होय।।
प्रेम-प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हें कोय।
जाहीं गली साईं मिले प्रेम कहाए सोये।।

संसार में प्रेम-प्रेम शब्द का प्रयोग तो बहुत किया जाता है परन्तु प्रेम होता नहीं, प्रेम है नहीं। प्रेम की भाषा प्रयोग कर ली है, प्रेम कह रहे हैं— कोई दूसरा भी कह रहा, तीसरा, चौथा, पाँचवां भी कह रहा है पर वस्तुत: प्रेम है नहीं क्योंकि जहां स्वार्थ हो वहां प्रेम नहीं है। स्वार्थ और प्रेम का तो विरोध है। पति-पत्नी प्रेम करते दिखाई दे रहे हैं परन्तु प्रेम नहीं स्वार्थ है। इसी तरह पिता-पुत्र, मां-बेटा, भाई-बहन, मित्र-मित्र भी प्रेम करते दिखाई दे रहे हैं परन्तु वास्तव में प्रेम नहीं। किसी का नाता प्रेम का नहीं क्योंकि प्रेम एक ही शर्त है-क्या? कि मांग कुछ नहीं। प्रेम में त्याग तो है परन्तु मांग कुछ नहीं। प्रेम में त्याग है कि मेरा तो कुछ चला जाए परन्तु कुछ आए नहीं उसे प्रेम कहते हैं और प्रेम:-

क्षण ही चढ़े क्षण ही उतरे, सो तो प्रेम नाहिं।
अधट प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहावे सोये।।

यानि कभी हो गया, कभी छोड़ दिया, कभी घट गया, कभी बढ़ गया, उस का नाम प्रेम नहीं। प्रेम क्या चीज़ है? प्रेम में जीना तो बहुत दूर की बात है, प्रेम में रहना भी दूर की बात है पर इस में कोई शक नहीं कि अगर प्रेम की एक छींट, सिर्फ एक छींट घट में पड़ गई तो उस के पीछे मन मतवाला हो कर फिरता रहेगा, उस की खोज करता रहेगा कि वो कैसे हो, कब हो, किधर से, कैसे हो।

महाराज युधिष्ठर ने जब राजसूय यज्ञ किया और यज्ञ भी बहुत बड़ा था तो कहते हैं कि एक नेवला आया और आकर वहां लोट पोट रहा है यानि उल्ट पल्ट कर लेट रहा है। **उस नेवले की आत्मा से किसी भगवद भक्त ने बात की यानि पूछा कि निओले तुम यहां पर क्यों लोटपोट हो रहे हो।** यहां क्या कर रहे हो परन्तु उस ने उत्तर न दिया पर चुप चाप लोट पोट होता रहा जितनी भी यज्ञशाला थी, सब जगह लेट गया और बाद में, बहुत बाद में उसने उत्तर दिया कि मैंने सुना था कि यहां कोई बहुत बड़ा यज्ञ है मैं इस कारण से यहां आया था। फिर पूछा कि तू ऐसे लेटता क्यों रहा इसका क्या अर्थ है? उस नेवले ने उत्तर दिया कि कहीं एक जगह कुछ यज्ञ हुआ था और उस यज्ञ में कुछ अन्न (वो भी सत्तु के) के कण पड़े थे और वो

कण जहां-जहां मेरे शरीर को लगे थे वो भाग सोने का हो गया पर औऱ सारा शरीर अभी बाकी है। मैं सोचता था कि सारे का सारा शरीर सोने का हो जाए इसलिए कहीं जो कण पड़े हों अन्न के बस उस की खोज में था। तो तब फिर पूछने वाले ने और उत्सकुता से पूछा कि वो कौन सा यज्ञ था? वो कैसा यज्ञ था? यहां तो बहुत बड़ा यज्ञ हुआ है पर वो कौन सा यज्ञ था?

तो उसने बताया कि एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी, एक उनका बेटा एक बहु यानि समेत बहु वो चार जीव थे और वो लगभग-लगभग कई दिनों से भूखे थे अन्नकाल पड़ा हुआ था। अन्नकाल का मतलब जैसे आजकल तो रेलगाड़ियां, हवाई जहाज़, समुन्द्री जहाज़ कई कुछ हैं जिन के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह समान अनाज इत्यादि आसानी से लाया ले जाया जा सकता है और-और भी कई प्रबन्ध हो गये। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए परन्तु कोई वक्त ऐसा था जब इन सब से कोई मतलब नहीं था यानि यह सब नहीं थे। यदि कोई यात्रा है तो थाड़ी दूर जाया जा सकता था वो भी घोड़ों, ऊंटों इत्यादि-इत्यादि से कुछ काम लिया जाता था, परन्तु ऐसा नहीं कि एक जगह से दूसरी जगह अन्न इत्यादि चला जाए और फिर जब जिधर वर्षा न हुई तो वहां पर सूखा पड़ जाता था, अकाल पड़ जाते थे औऱ बहुत अन्नकाल पड़ा भी करते थे और लोगों को बहुत-बहुत मुसीबतों का सामना करना पड़ता था।

इस के साथ-साथ कभी-कभी ऐसा भी होता कि लोग खड्डे खोद कर अन्न दबा देते थे यानि अनाज की जमीन में गहरा खोद कर इस प्रकार से दबा देते थे कि ऊपर से उस को हवा न लगे औऱ फिर दो, पांच, दस वर्ष में अगर काल पड़ जाए तो उस खड्डे में से अन्न निकाल कर अपनी प्राण रक्षा करते थे। मैंने अपने जीवन में होश में खड्डा तो देखा है अपने गांव में बहुत गहरा था और उस में पानी भर रहा था बाहर से पानी आने का कोई किवाड़ था नहीं पर फिर भी पानी भर रहा था उस को खड्डा कहते हैं औऱ सुनते थे कि कभी उसमें अन्न दबा देते थे और वक्त (काल) आने पर निकालते थे। कहने का तात्पर्य कि अन्न काल पड़ते थे और अन्न काल में बड़ी भारी उलझन हो जाती थी।

ऐसा अन्न काल पड़ा कि लोग कई-कई दिन भूखे रह गए। इसी प्रकार से वो चारों जीव कई दिनों से भूखे थे तो उन को किसी प्रकार से एक सेर सत्तु मिल गए और उस को उन्होंने घोला और उन के लडडू बांध लिए और फिर खाने के लिए उन लडडूओं के चार भाग किए पर जैसे उन्होंने चार भाग किये वैसे ही कोई बहुत भूखा दरवेश द्वार पर आन खड़ा हुआ और कहने लगा हाय-हाय मरा जा रहा हूं मैं मरा जा रहा हूं भूख से। वैसे ही ब्राह्मण ने अपना हिस्सा उठा कर दे दिया पर वो दरवेश कहता मेरा तो कुछ नहीं बना उल्टे और भूख धधक गई। हाय मैं तो मरा जा रहा हूं-भूख के मारे, जब उस की यह बात सुनी तो ब्राह्मणी ने अपना हिस्सा उठा कर दे दिया, उसने ब्राह्मणी का हिस्सा भी खा लिया पर कहता कुछ नहीं बना न मालूम कितने दिनों का भूखा हूं, हाय! मैं तो मरा जा रहा हूं, तब लड़के ने भी अपना हिस्सा उठा कर दे दिया और अभी तो लड़के का हिस्सा खा भी न पाया था कि लड़के की पत्नी ने बगैर कुछ कहे सुने अपना हिस्सा भी उठा कर दे दिया। दरवेश ने चारों का हिस्सा खाया और दुआ आर्शीवाद देता हुआ वो तो वहां से चला गया।

अब ब्राह्मण-ब्राह्मणी, बेटा, बहु चारों के चारों फिर भूखे के भूखे और न जाने कब तक ऐसे रहेंगे बस पानी पी कर गुजारा कर लिया। नेवला

कहता जो कण उस वक्त वहां गिरे थे उस पर मैं लेटा था और मेरे शरीर का वह हिस्सा जहाँ कण लगे थे, सोने का हो गया और बाकी शरीर पड़ा है ज्यों का त्यों इस कारण से कहता हूं कि उसके समान कोई दूसरा यज्ञ हो जिससे मेरे शरीर का बाकी हिस्सा भी सोने का हो जाए। तो ऐसा यज्ञ खोज कर कहीं चाहो और अगर कोई जिसे मिल तो सक रहा है पर जान कर भूखा रहेगा तो बात बनेगी नहीं। वो तो कभी हो, कभी संयोग मिलेगा तो बात बनेगी, आगे बात बढ़ेगी सब कामों के संयोग होते हैं, सब कामों के कारण होते हैं।

कारज से कारण कठिन, साधन कठिन विवेक।
होये गुणाक्षर एक जो तो प्रत्यूह अनेक।।

काम से ज्याद कारण कठिन होता है। कारण की उपलब्धि होनी और भी कठिन है और यदि कारण की उपलब्धि हो जाए तो फिर साधन जुटाना, यह बहुत बड़े हिम्मतवरों का काम है। अगर कारण भी बन जाए और फिर उस में साधन न जुटाए यानि उस तक न पहुंच पाए, वैसा न कर पाए तो वो कारण भी और कार्य भी बेकार चला जाएगा तो तब क्या कहते हैं।

घुण लकड़ी को काटता है और लकड़ी कटते-कटते अगर कोई अक्षर बन जाए-वैसे अक्षर यानि अ य र ल व ब भ म बनते नहीं पर अगर बन जाए तो भी संयोग ही है उस में। बन क्या जाए **''ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा''** उस को कर के कहा—यहां यह प्रसंग बहुत बार देते हैं तुलसी दास जी रामायण में। यहां पर ज्ञान की महिमा गाई है। तो कहते हैं:—

''ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा,
पर कट गए प्रेर न लागा राजा।। ''

उस को फंसने में देर नहीं लगती क्योंकि धार पर चलना है। इसी लिए बराबर धार पर नज़र रखनी पड़ेगी क्योंकि अगर नज़र इधर गई तो पांव कटा। इसी प्रकार से गुरू महाराज या महापुरूष या सन्तपुरूष इसमे से बहुत हल्का यानि सरल बात लेते हैं इसका नाम फिर ज्ञान भक्ति योग है। ज्ञान के साथ में भक्ति, ज्ञान से मुराद है जानकारी यानि समझ। बड़े-बड़े पुराने वेदान्ती देखे होंगे या कभी संयोग बने तो देखोगे, गुरू महाराज ने तो खूब ढिंढोरा पीट कर कहा था परन्तु मैंने भी एक बार देखे हैं और वो क्या कर रहे हैं ? सब खुचर पुचर-2 कुछ रट रहे हैं कुछ श्लोक रटे जपे जा रहे हैं इस से ज्यादा कुछ नहीं।

Practical नाम की चीज़ ही नहीं क्या कह रहे हैं **''अहं ब्रह्मस्मी''** मैं ब्रह्म हूं या ब्रह्म सत्यम जगत मिथ्या यह सारा जगत मिथ्या यानि झूठा है और ब्रह्म सत्त है या क्या भावना कर रहे हैं कि मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं बस ऐसी भावना करो कि मैं ब्रह्म हूं मैं ब्रह्म हूं पर यह सब प्रैक्टीकल जीवन में काम नहीं आता और यह सब बातें हैं इन से न कुछ होने का है क्यों कि न ब्रह्म हो गया, न होने का और न ही होगा, इसलिए कोई अर्थ सिद्ध न होगा। योग वशिष्ट में बहुत कुछ दर्ज कर दिया और एक जगह यह बात दर्ज कर दी है कि गुरू वशिष्ट जी कह रहे हैं कि, 'हे राम जी, मैं आकाश में उड़ते हुए छलांग लगा गया। किसी जगह फिर संकल्प से कुटी बनाई और उस में ध्यानास्त हो गया''। जब राम जी पूछते हैं कि कैसे आकाश में उड़ कर गए थे तो वहां कह रहे हैं कि योग धारणा से यानि योग धारणा कुछ होती है पर साथ में यह भी कह दिया कि यह ज्ञान में बाधक है—

इस एक बात को न पकड़ कर उस एक बात यानि योग धारणा को पकड़ लिया। किसी के जीवन की ऊंचाई गहराई पकड़ोगे तो पता चलेगा जैसे महारानी चुढ़ाला जिस ने जंगल में जाकर अपने

पति को ज्ञान कराया। वो कहती हैं कि प्राण अपान को सम कर के ऐसे चढ़ जाओ अगर नीचे उतरे तो गन्दगी इसलिए लोग लोकान्तर को चीरती हुई ऊपर चढ़ जाऊं ऊपर चली जाऊं। तो आवश्यकता इस बात की रहती है कि उन बातों को न पकड़ कर बस एक सरल सी बात दिखाई दी-क्या? कि मैं ब्रह्म हूं।

कहते हैं कि एक नगरी यानि किसी राजा की रियास्त थी, वहां पर एक विद्वान ज्ञानवान वैद्य (जो कि ज्ञानवान भी था और गुरू भक्त भी)चला गया और क्या देखता है जिस किसी से कुछ पूछता है वो कहता है अहं ब्रह्मस्मी यानि मैं ब्रह्म हूं। एक-दो नहीं जिस किसी से भी कुछ पूछा वही कहता अहं ब्रह्मस्मी। कहता बड़े आश्चर्य की बात है कि यहां पर सब ब्रह्मज्ञानी हैं, सब को ब्रह्मज्ञान है। खैर वो पहुंचते-पहुंचते राजा तो पहुंचा क्यों कि राजा को कुछ रोग था जिस का इलाज नहीं हो सक रहा था, वैद्य तो था ही तो बात चलते-चलते उस ने कहा कि राजन इस का इलाज हो सकता है। थोड़ी बहुत दवाई दी यानि इलाज किया और रोग कुछ पीछे हट भी गया और तब वो **राजा से कहने लगा हुजूर इस का इलाज तो मेरे पास है और मैंने दवाई भी तैयार की है बस अगर इस में किसी ब्रह्मज्ञानी का तेल मिला कर मालिश की जाए तो रोग ठीक हो सकता है** और सारा रोग जाता रहेगा। राजा कहने लगा कोई खास बात नहीं और झट से दरबारियों को हुक्म दिया कि लाओ भाई किसी ब्रह्मज्ञानी का तेल लाओ। दरबारी जिस किसी से भी पूछते भाई तुम ब्रह्मज्ञानी हो **राजा को ब्रह्मज्ञानी का तेल चाहिए, तो कोई भी ब्रह्मज्ञानी न मिला और न कोई कहे कि ''अहं ब्रह्मस्मी'' कि मैं ब्रह्म हूं।** दरबारी खाली हाथ लौट कर आ गये तो वैद्य जी कहने लगे कि मैं बताता हूं। अब वैद्य जी की जिन-जिन से बात हुई थी और जो कह रहे थे अहं ब्रह्मस्मी (मैं ब्रह्म हूं) उन के पास ले गया और कहा कि इन से मेरी बात हुई थी और यह कह रहे थे कि मैं ब्रह्म हूं। अब जैसे ही यह कहा कि यह ब्रह्मज्ञानी हैं। वो लोग पांव पकड़ने लगे कि हमारी जान बचाओ।

वैद्य जी कहते कि भाई तुम ब्रह्म हो और ब्रह्म न तो गलता है, न सड़ता है, उसे भूख प्यास लगती नहीं, दुख तकलीफ कुछ होता ही नहीं और जब कुछ होता ही नहीं तो फिक्र किस बात का तुम तो ब्रह्म हो। तो कहते नहीं भाई-हमने तो कहना सीखा है और हमें कुछ पता नहीं। हमारी जान बचाओ क्योंकि राजा का हुक्म है और राजा की बात कौन काटे। राजा का रोग है और दवाई में ब्रह्मज्ञानी का तेल मिला कर मालिश करनी है पर कौन करे। तो कहते हैं कोई भी ब्रह्मज्ञानी न मिला, वैद्य जी के पांव पड़ गये कि हमारी जान बचाओ नहीं तो आज जान से हाथ धोना पड़ेगा।

तो वैद्य जी पूछते हैं कि अब तो नहीं कहोगे कि अहं ब्रह्मस्मी (मैं ब्रह्म हूं) वो कहने लगे कि भूल कर भी नहीं, हम कभी नहीं कहेंगे। लौट कर राजा के पास आते हैं कहते हैं कि कोई खास ब्रह्मज्ञानी नहीं मिला खैर चिन्ता की बात नहीं और राजा को यह कह कर टाल दिया कि इस का और भी उपाय है औऱ कहीं कुछ और तेल का प्रबन्ध करता हूं। कहने का तात्पर्य कि यह दिखाना था कि बातों से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता कि मैं ब्रह्म हूं। फिर अपनी बात पर आएं कि जिस प्रकार वो नेवला कह रहा था कि मेरा शरीर सोने का हो गया, उस यज्ञ में, तो यज्ञ की कोई धारा होती है पर बहुत कोई खास धारा होती है। क्या होती है?

एक बार की बात है कहीं कोई भवन सेवा का कार्य था एक कोई बहुत गरीब स्त्री थी और

सत्संग की बहुत ज्यादा प्रेमी। कहने लगी हे गुरू महाराज सब कोई यानि दूसरे प्रेमी कुछ न कुछ कर रहे हैं-कोई ईंटों की सेवा कर रहा है, कोई सीमेंट दे रहा है, कोई लकड़ी-सब कोई कुछ न कुछ भवन निर्माण सेवा में दे रहे हैं यहां तक कि छोटे-2 बच्चे भी कुछ न कुछ कर रहे हैं। वो बुढ़िया एक तो उम्र की इतनी बूढ़ी कि शरीर से कोई सेवा करने योग्य नहीं दूसरा पास भी कुछ नहीं जो दे सके तो कहती मैं क्या करूं? यह बात ठीक है कि किसी ने मुझे कुछ कहा भी नहीं कि तुम भी कुछ धन से या शरीर से सेवा जरूर करो क्योंकि कोई बाध्य नहीं है। यह सोचते-सोचते रोने लग गई औऱ रोत-रोते उसे नींद आ गई और नींद में स्वपन आया कि गुरू महाराज जी फरमा रहे हैं कि बैंक में से पैसे निकाल कर दे दिये (यानि जिसके पास है और वो दे सक रहा है) तो कौन सी खास सेवा है पर जिस के पास नहीं है वो कुछ दे-वो सेवा है। इतने में उस की आंख खुल गई और याद आया कि अगर कुछ है तो बेच डालो।

यहीं से विवेक खुलता है इसी प्रकार से यात्रा है-नीचे खोदना है यानि नीचे को भी जाना है और ऊपर को भी चढ़ना है तभी विकास होगा। नीचे को ज्यादा गए तो ऊपर को थोड़ा सा विकास होगा पर डरो मत, नाम की यात्रा है, शब्द की धारा है।

दो ही धाराएँ है दुनियां में-एक धारा तो नरक के गड्डे की तरफ ले जा रही है, बन्धन में डाल रही है, भवसागर में डाल रही है धारा क्या? क्या होती है वो धारा? क्या-क्या याद, दुनिया की याद, पति की याद, संसार की याद समाज की याद, पति की याद, विरोधी की याद, समाज की याद, शत्रु की याद, विरोधी की याद, मित्र की याद पर कौन पर कौन याद कर रहा है, भीतर चित्त, क्या कोई उस को रोक रहा है उस के पास कोई बहाना नहीं और दूसरी तरफ भक्ति के लिए तो भक्त सौ-सौ बहाने खड़े कर देते हैं कि मेरे पास टाईम नहीं है-फुर्सत कहां कि मैं भगवान का भजन करूं पर उस में क्या बहाना कर सकता है कि दुकानदार तराजू से तोल भी रहा पर दुनिया की याद भी कर रहा है-धारा चल रही है। कुछ भी करे वो धारा बराबर चल रही है अपना काम कर रही है वो धारा-वो याद-एक हटी दूसरी, दूसरी हटी तीसरी, तीसरी हटी, चौथी इस तरह एक गई दूसरी आ गई, वहां कोई सौदा करने वाला नहीं कि अभी यह याद तो पूरी हुई नहीं दूसरी खड़ी हो गई इसी तरह-तरह और-2 याद पर याद (इच्छा पर इच्छा) और फिर याद करते-करते रात को जब नींद आ गई तो वो हल्की हो गई यानि स्वपन में भी वो धारा वो याद चल रही है।

नींद आ गई मतलब-मन, चित्त थक गए हैं, इन्द्रियां थक गई हैं। अब इन्द्रियां थक गईं तो पहले आंख बन्द हो गई, हाथ, पांव शिथिल हो गए और शरीर ढीला पड़ गया, स्वांस गहरा चलने लग गया पर जब मन भी थक गया यानि नींद इतनी गहरी आ गई कि मन भी थक गया तो उस धारा यानि याद में कुछ रूकावट पड़ी है। कहने का भाव कि जब तक तो सिर्फ इन्द्रियां थी, पर मन नहीं थका था तब तक वो धारा चालू है और कुछ न कुछ कुरमुर-कुरमुर कर रही और जब मन पूरी तरह से थक गया तो फिर घोर निद्रा यानि गहरी नींद आ गई उस को सुषुप्ती अवस्था कहते हैं वो चाहे एक घण्टे की है या चार घण्टे की हो उस में फिर उस धारा यानि याद में ब्रेक पड़ी है यानि रूकी है या हटी है। नहीं तो वो हर वक्त चल रही, हर वक्त चल रही है। चाहे पानी पी रहे हैं, भोजन कर रहे या कुछ काम कर रहे हैं और चाहे भूखे हैं पर वो धारा

बराबर चल रही है। एक हटी तो दूसरी आ गई, धाराएँ कई चल रहीं हैं।

दुखी है तो भी, सुखी है तो भी कुछ न कुछ उस में कूड़ा कबाड़ा इकट्ठा होए जा रहा है, वो रील अन्दर भरती जा रही है, टेप रिकार्डर की तरह अन्दर टेप किए जा रही है, कोई इसे रोकने वाला नहीं और न ही यह कभी खत्म होती है। इस में कोई ब्रेक नहीं चाहे राम-राम कहो, ओम-ओम कहो या वाहिगुरू-वाहिगुरू कहो तो भी हो रही है चाहे कीर्तन करो, पूजाएँ करो या पाठ करो तो भी वो धारा बराबर चल रही है यानि भीतर हर वक्त कुछ न कुछ चल रहा है और कुरमर-कुरमुर हो रही है।

यह बात प्रैक्टीकल है कि चाहे यज्ञ करो, हवन करो या भण्डारा करो पर उस धारा को, उस कुरमुर को कोई रोकने वाला नहीं, वो तो बराबर चल रही है और चलती रहेगी जब तक उस को रोकने की युक्ति का पता न हो यानि जब तक सच्चे नाम का सुमिरण यानि उस एक परम पिता, पारब्रह्म के भजन द्वारा उस पर चोट नहीं करते यानि रोक नहीं लगाते। ऊपर से अहं ब्रह्मस्मी कहने से ब्रह्म नहीं हो जाएगा क्योंकि भीतर तो वो धारा बराबर चल रही है, इसलिए कहने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। श्री गुरू महाराज जी कहा करते थे कि यह ऊपर से कहने की क्या जरूरत पड़ी कि 'अहं ब्रह्मस्मी' कि मैं ब्रह्म हूं। जब ब्रह्म हो ही गया तो कहने की क्या जरूरत है।

जैसे मान लो एक मिनट के लिए कि कोई डाक्टर कहे कि मैं डाक्टर हूं या राष्ट्रपति कहे कि मैं राष्ट्रपति हूं- जब डाक्टर हो गया तो हो गया या राष्ट्रपति हो गया तो हो गया- पर जो हो गया है अब वो नहीं कहता। दूसरे कहें तो ठीक - कोई बात नहीं, पर खुद अपने को होना कहे तो उस को कहेंगे कि पागल हो गया है। डाक्टर कहे कि मैं डाक्टर हूं तो लोग कहेंगे कि अच्छा भला था क्या इस का दिमाग खराब हो गया है यानि पागल हो गया है। प्रधानमंत्री कहे कि मैं प्रधानमंत्री हूं- कहने से कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता- जब हो गया तो हो गया। इसी तरह ब्रह्म कहने से भी ब्रह्म नहीं हो जाएगा यानि कोई अर्थ सिद्ध न होगा।

ब्रह्म कैसे हो- इस के घर दूर हैं। किस प्रकार से दूर हैं ? क्योंकि जब तक मन, चित्त, इन्द्रियां, बुद्धि सब के सब घोर आनन्द में चिरकाल तक न डूबे रहें और दुख का नाम न रहे तब तक ब्रह्म होने का नहीं पर ऐसा भी नहीं कि होता भी नहीं। यह बात भी ठीक है कि ऐसा नहीं होता कि दुख न आएं क्योंकि दुनिया में ऐसी कोई दीवार नहीं बनी जो दुखों को रोक सके, कि दुख बस दीवार के एक तरफ रहें और दूसरी तरफ न आ सके और न ही कभी बनेगी हां दुख होंगे पर वो सन्तुष्ट है, इतना आनन्दित है कि वो दुख भांप नहीं रहे। वो अपने काम में यानि ईश्वर भजन, सत्त-सुमिरण में इतना डट गया कि दुख होते हुए भी भांप नहीं रहे यानि महसूस नहीं हो रहे। (उन्हें वो परम पिता परमात्मा की दात या इच्छा समझते हुए और अधिक दृढ़ विश्वास सत सुमिरण और परमात्मा के ध्यान में जुट जाता है) हां तो कहने जा रहे थे कि बहुत चिरकाल तक आनन्द में डूबे तो भीतर कुछ प्रेम की छींट पड़ती है और भीतर प्रेम का झरना बहता है। उस प्रेम की छींट को पाने की जिसे लालसा लग जाए, उस का नाम फिर सत्संग है, प्रेम की एक छींट मात्र पड़ गई तो इस लिए कहते हैं:—

''एक शब्द गुरूदेव का, जाका अनन्त विचार।
थाके मुनिजन पण्डिता, वेद न पावे पार।।''

वो शब्द मूर्खों के हाथ नहीं लगता औऱ अगर हाथ लग भी जाए तो काम नहीं आता, तीन

पांच करते हैं और समझ नहीं पाते। सदगुरू की कृपा के बिना समझ में नहीं आता और सेवा के बगैर कोई चाहे कि मैं इस में जुट जाऊंगा, यह कभी न होगा क्योंकि सेवा को ही मेवा लगता है। पहले वो सेवा नहीं करता था क्योंकि सेवा के फल का पता नहीं था पर जब सत्तबोध हो गया तो अब सेवा में जुट।

जो सेवा में जुट गया उस की फिर वो धारा, कौन सी ? जो नीचे को यानि चौरासी में ले जाती है, कटती है जिस के बारे में बहुत कुछ कह चुके हैं। जब यह धारा कटी तो दूसरी धारा चल पड़ी। दूसरी धारा कौन सी ? जो ऊपर को ले जाती है यानि सत्संग की धारा चल पड़ी। सत्संग सुने भी और सुनाये भी, यानि सुन रहे हैं या सुना रहे हैं। किस को सुना रहे हैं, इस से कोई फर्क नहीं कि माता, भाई, बहन,भाबी को सुना रहे हैं या पड़ोसी को। वो यह भी नहीं देखता कि यह कोई नीच जाति का है, पापी है, या पुनी: है, वो तो सिर्फ आत्मा को देखता है। वो यह भी नहीं देखता कि यह बहुत बड़ा पंडित है, बहुत कुछ जानता होगा। बस अब धारा बदल गई है, क्या स्थिति हो गई और श्री गुरू महाराज जी की कृपा हो गई है। संस्कृत में इस को समता कहते हैं।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन: ।।

(गीता अध्याय 5 शलोक18)

वह बस एक ही मौके की खोज में रहता है कि सत्संग की बात हो। एक ही इच्छा है कि सत्संग के वचन मिलें, पपीहे की भांति उस की तड़फ सत्संग की तरफ रहती है।

बिहार में कोडरमा की बात है, प्रेमियों ने कहा कि वहां पर ऐसा सत्संग होना चाहिए, सरदार जी वहां प्रधान थे कहने लगे लाओ हमको भी ऐसा सत्संग सुनाओ और हम सब बन्दोबस्त कर देंगे। दरी-दुरी बिछा दी स्पीकर शायद उन का अपना रहा होगा, लगा दिया, हम अपने सीधे स्वभाव से गए और सत्संग प्रारम्भ कर दिया। कोयले वाले मजदूर थे-दांत तो सफेद दिखाई दे रहे थे पर बाकी सब कुछ काला ही काला, काले-काले पूरे भूत से बने हुए लग रहे थे लोग। अच्छा अब जब सत्संग हो गया और हम अभी वहीं थे कि लगे सौदा बाजी करने कि लो जी सत्संग भी करा दिया, अब ठीक है ना। बाद में पता चला कि इन गरीब मजदूरों की कुछ सुविधाओं(Facilities) के सम्बध में कुछ मांगे थी। इधर हमने तो कुछ लेना-देना नहीं था, हमने तो सत्संग सुनाना था। तो इस प्रकार से इन की मांग पूरी की कि लो जी यह भी तुम्हें एक तोहफा दे दिया है। प्रेमियों से बात कर रहे थे कि हमें तो कोई फर्क नहीं, मुझे तो शीशा सामने चाहिए था।

चेहरा तो अपना देखना है, यानि मुझे कारण चाहिए था सत्संग का। मुझे तो सत्संग करना है, मुझे तो सत्संग से प्रेम, बहुत ज्यादा प्रेम है इस लिए नहीं कि सत्संग मेरा अपना है बल्कि इसलिए कि सत्संग से मुझे बहुत ज्यादा लगाव है।

कोई भी हो चोर, डाकू, ठग उस को भी सत्संग सुनाएँगे और अगर उस ने सुना तो उस को भी कहें शुक्रिया, तुमने सुना तो। बुद्धु, अनाड़ी, कोई हो, कोई फिकर मत करो, अगर सुना है तो एक न एक दिन जरूर फर्क पड़ेगा शायद कब जा कर पर सत्संग का फर्क जरूर इस लिए मुझे सत्संग सुनाना ही है। तो इसी प्रकार से सत्संग की जो धारा और फिर जो इस को सम्भालेगा, इस से हटना नहीं, बस एक ही खोज है कि इस को क्या सुनाऊँ, उस को क्या सुनाऊँ ताकि जीव को नीचे ले जाने वाली धारा को काट कर ऊपर की तरफ ले जाने वाली धारा में लगाएं, जिस से इस का परम कल्याण हो।

एक दिन यहां पर मिस्त्री लगा हुआ था और चण्डीगढ़ से एक प्रेमी आ गया वो प्रेमी बहुत बातें बनाने वाला था यानि बातूनी था। हमने मिस्त्री को भी कुछ समय के लिए हटा दिया, चाय पीने लगे थे और अभी यह सोच ही रहे थे कि इस को क्या सुनाएं, यानि संसारिक धारा से मोड़ें पर वो बोलने लगा 'लौ जी पिण्डां विच शुद्ध वायु हुन्दी है, दातन वगैरा भी आम मिल जांदे ने'' तो तब फिर उसको रोकना पड़ा कि कम से कम चुप रह, ठहर जा, और तब सत्संग की धारा शुरू की।

मात्र एक बात का विचार रखते हैं, यही इच्छा रखते हैं कि इस को क्या सुनाऐं। इसी प्रकार सदगुरू कभी-कभी डांट भी लगाते हैं, किस लिए, कि इस का कल्याण कैसे हो। मान लो एक मिनट के लिए किसी बच्चे को फोड़ा हो जाता है और उस फोड़े में पीक भर जाती है जिस से बच्चे को बहुत दर्द औऱ दुख हो रहा है तो बच्चे की मां उस को किसी डॉक्टर के पास ले जाएगी उपचार के लिए और डॉक्टर जैसा कहे मां ठीक उसी प्रकार दिल मजबूत कर के बच्चे के हाथ पांव मजबूती से पकड़ कर रखती है और डॉक्टर उस फोड़े को काट कर दबा-दबा कर उस समय पीक को निकालेगा और काटते समय और दबाते समय नि:संदेह बच्चे को बहुत पीड़ा होगी और माता जानती है कि यह सब डॉक्टर बच्चे को ठीक करने के लिए कर रहा है उस को कष्ट देने के लिए नहीं वो जानती है कि एक बार इक्टठा यानि बहुत कष्ट हो रहा है परन्तु इस कष्ट से बच्चा ठीक हो जाएगा ऐसी सोच बच्चे का ईलाज करवाती है। इसी प्रकार से हे जीव अगर तेरे शास्त्र कह रहे हैं कि सेवा में जुट, आज्ञा मान- तो शास्त्र माता है और सदगुरू डॉक्टर है। सदगुरू भी जानता है कि इस को कष्ट होगा पर साथ यह भी जानता है कि:—

लाख सीस तो दे चुके यमराजा की भेंट।
एक सीस तूने न दिया श्री हरि के हेत।।

सत्संग सूचनाएं

28 अगस्त दिन रविवार : प्रवचन :- स्वामी श्री विशेषानंद जी। स्थान : गांव मनसूहा कलां, जिला-रोपड़ **समय :** प्रात: 11 से 01 तक। **प्रार्थी : अवतार सिंह —**
सम्पर्क- 8437802031 — 8284078968

By Post पत्रिका संबंधी विशेष सूचना

जो सज्जन पत्रिका डाक द्वारा मंगवाते हैं वे पत्रिका प्राप्त न होने पर aavpmahilpur@gmail.com पर मेल करें अथवा आश्रम के नाम एक पत्र लिखें उस पत्र के द्वारा वास्तविक त्रुटिकर्ता को खोजा जाए एवं आवश्यकतानुसार कानूनी कार्यवाही की जा सके।